International Journal of Hindi Research
ISSN: 2455-2232, Impact Factor: RJIF 5.22
www.hindijournal.com
Volume 3; Issue 2; March 2017; Page No. 30-33

पं. लखमीचंद के सांगों में लोक-जीवन

डॉ. पूनम काजल

असिस्टेंट प्रोफेसर, (हिन्दी विभाग), हिन्दू कन्या महाविद्यालय, जींद (हरियाणा), भारत।

सारांश

कबीर की ही भाँति 'मसि कागद छुओ नहिं कलम गह्यो नहिं हाथ' को सार्थक करने वाले हरियाणवी साहित्यकार एवं रागनी के वर्तमान स्वरूप के जन्मदाता पं. लखमीचंद जी ने हरियाणवी सांग विधा को परम्परागत रूढ़िगत बन्धनों से मुक्त कर एक नई दिशा दी। इनके सांगों में लोकमानस की भावनाएँ, करूणा और व्यथा पूर्ण व्यापकता के साथ दिखाई देती हैं। उनका व्यापक रचना–संसार इतिहास, पुराण एवं लोक से कथात्मक आधार ग्रहण करके भी हरियाणवी जन–जीवन से गहरे से जुड़ा हुआ है।

मूल शब्द: सांग, प्रबुद्ध, विश्रृंखलित, विश्रुत, सार्वभौम, स्वेच्छाचारिता, विक्षुब्ध

प्रस्तावना

एक जागरूक साहित्यकार होने के कारण पं. लखमीचंद ने अपने सांगों को जन–साधारण के जीवन–दर्शन से जोड़कर सामाजिक सम्बन्धों, आचार–विचारों एवं लोक विश्वासों का विशद चित्रण किया है, क्योंकि एक प्रबुद्ध साहित्यकार समकालीन सामाजिक परिवेश के प्रति उपेक्षा–भाव नहीं रख सकता। परिवर्तित होते जीवन–मूल्यों, विखंडित होते पारिवारिक सम्बन्धों के प्रति चिन्तित लखमीचंद परिवार में श्रेष्ठ मूल्यों के संस्थापन के पक्षधर थे, क्योंकि समाज की समस्त भावनाएँ, समस्त लोकाचार, सम्पूर्ण जीवन–विधि तथा आचार–व्यवहार परिवार के माध्यम से ही व्यक्ति की आत्मा में प्रविष्ट होकर घुलते–मिलते रहते हैं। सह विडम्बना ही है कि आधुनिक युग में भौतिकता के प्रभावस्वरूप भारतीय समाज की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण संस्था 'परिवार' तथा समाज का महत्त्वपूर्ण अंग 'व्यक्ति' सामाजिक परिवर्तन का शिकार बना है। वर्तमान युग की इस त्रासद स्थिति के संदर्भ में शशि जेकब लिखती हैं – 'समाज और समाज की इकाई 'परिवार' का व्यक्तित्व भावनाओं पर आधारित है, आश्रित है। इन्हीं भावनाओं, संवेदनाओं के कारण व्यक्ति, व्यक्ति से सम्बन्ध बनाए रखता है। संवेदनाओं के मर जाने पर यह सम्बन्ध भी समाप्त हो जाता है एवं उनके मध्य दीवार खड़ी हो जाती है। एक अभेद्य दीवार, जिसके दोनों तरफ के सिरे फिर कभी नहीं मिल सकते, दोनों का परस्पर कोई मतलब नहीं रह जाता। एक दूसरे के प्रति संवेदना, कर्त्तव्य, उत्सुकता सब समाप्त हो जाते हैं।'[1]

परिवर्तित होते पारिवारिक मूल्यों के प्रति सजग लखमीचंद ने जन–जन के मानस में गहराई तक फैली हुई स्वार्थ–भावना, भाई–भाई के बीच पसरते अविश्वास, विश्रृंखलित होते गुरू–शिष्य सम्बन्ध, बेईमानी एवं नैतिक मूल्यों के पतन की पराकाष्ठा को सांग 'नल–दमयन्ती' की प्रारम्भिक पंक्तियों में दर्शाया है –

'समझ ना सकते जगत के मन पै अज्ञान रूपी मल होग्या।
बेईमान मैं मग्न रहै सैं गांठ–गांठ मैं छल होग्या।।
भाई के धोरै मा जाया भाई चाहता बैठणा पास नहीं।
जै बीर न पति कमा कै ल्यादे तै पेट भरण की आस नहीं।।
मात–पिता गुरु–शिष्य सुत नै कहैं मेरे चरण का दास नहीं।
मित्र बण कै दगा कमाज्यां नौकर का विश्वास नहीं।।' [2]

यह सत्य है कि आधुनिक जीवन की यान्त्रिकता ने जीवन को अत्यधिक त्रासद बना दिया है। विक्षुब्ध एवं असन्तुष्ट परिस्थितियों से हताश–निराश मनुष्य अपनी परेशानियों का हल नशे में पाता है। नशा एवं जुआ जैसे व्यसन स्व–विनाश करने तक ही सीमित नहीं है, बल्कि ये परिवार, समाज, सामाजिक मर्यादाओं, नैतिक आचरण और सभी प्रकार के सांस्कृतिक–राष्ट्रीय मूल्यों के विध्वंसक भी हैं। आधुनिक युग में बढ़ती बेरोजगारी एवं अभावग्रस्तता के कारण पीड़ित एवं तनावग्रस्त वर्ग कम श्रम से अधिक धन कमाने के लोभ में जुए जैसे व्यसन की ओर आकृष्ट होता जा रहा है। विघटित होते सामाजिक मूल्यों के प्रति चिन्तित लखमीचंद एक मार्गदर्शक के रूप में दिखाई देते हैं। सांग 'नल–दमयन्ती' में समाज को पतनोन्मुख करने वाली चोरी, जुआ, परस्त्रीगमन आदि बुराइयों के दुष्परिणामों को रेखांकित कर समाज को सचेत करते हुए लिखते हैं।

'ऐबदार माणस नै तै सब कह्या करैं बदकार।
ऐब घटादे आबरू माणस की डोब दे मझधार।
माणस नै मारण की हों सै नरक निशानी चार।
चोरी जुआ जामनी और पराई नार।' [3]

सांग 'चीर पर्व' व 'विराट पर्व' में भी जुए के दुष्परिणामों का यथेष्ट चित्रण है। सांग 'नल–दमयन्ती' में दमयन्ती राजा नल को जुआ खेलने से रोकने का हरसंभव प्रयास करती है –

'उल्टे रास्ते पै लेज्या सै हो बालम तकदीर तेरी।
जुए के मैं लुटज्या छुटज्या धन–माया जागीर तेरी।' [4]

पं. लखमीचंद सांग 'नौटंकी' में फूलसिंह के माध्यम से वर्तमान समाज में व्याप्त रिश्वतखोरी का चित्रण कर सामाजिक भ्रष्टाचार को उद्घाटित करते हैं। फूलसिंह बाग में ठहरने के लिए मालिन को रिश्वत देने की सोचता है –

'न्यूं सोची थी छत्री नै निभा तू अपनी होड़ दे।
रात–रात भर डटणा सै मालिण नै कुछ कोड़ दे।' [5]

समाज की इन विषमताओं का चित्रण करने के मूल में कदाचित यही भावना काम कर रही है कि प्राचीन सांस्कृतिक मूल्यों में बंधा

समाज ही उन्नत हो सकता है। सांग 'राजा हरिश्चन्द्र' में पुत्र की मृत्यु होने पर भी हरिश्चन्द्र द्वारा अपनी सत्यनिष्ठा का निर्वाह करते हुए कर्त्तव्य–पथ से विचलित न होना, निज कर्म के समक्ष पुत्र–मोह को तिलांजलि देकर स्वधर्म का निर्वाह करना आदि घटनाएं निःसन्देह समाज को वचन–बद्धता एवं कर्त्तव्य–परायणता का महान सन्देश देती प्रतीत होती हैं।

युग सापेक्ष प्रतिमान परिवर्तित हो सकते हैं, परन्तु यथार्थ वही रहता है। नारी सृष्टि की आदि शक्ति होते हुए भी सदैव उपेक्षित एवं प्रताड़ित होती रही है। अशिक्षा, अज्ञानता और अधीनता के अंधकार युग से शिक्षा, जागृति और समानता के प्रकाश पुंज में आने के पश्चात् आज भी नारी–शोषण की समस्या उतनी ही ज्वलंत है, जितनी प्राचीन युग में थी। कदाचित इसी बात को लक्ष्य कर लखमीचंद नारी की करूण दशा एवं जटिल सामाजिक स्थितियों का चित्रण कर सामाजिक बदलाव की अपेक्षा रखते हैं। सांग 'नल–दमयन्ती' में विकट परिस्थितियों में वन–वन भटकती दमयन्ती नल के द्वारा उपेक्षित होकर दर–दर की ठोकरें खाने को विवश है। दमयन्ती की इस निरीह अवस्था को देख कर लखमीचंद का भावपूर्ण हृदय करूणा–विगलित हो जाता है –

'इसी करद्यी जणूं मार कै धरद्यी, कती बन्द थी वाणी।
कहै लखमीचंद राणी गरीब बिचारी गऊ, इसके फिकर मैं
जलेगा मेरा लहु।' [6]

एक पुरुष की मनमानी, स्वेच्छाचारिता एवं नारी की कारूणिक दशा को चित्रित कर कदाचित लखमीचंद समाज को यही सन्देश देना चाहते हैं कि पति–पत्नी का पारस्परिक सौहार्द्र, सुख–दुख को सांझा करने की भावना तथा परस्पर अटूट विश्वास ही परिवार के मूलाधार हैं।

सांग 'चीर पर्व' में द्रौपदी की बेबसी, पीड़ा एवं समाज में प्रबल पुरुष वर्ग के प्रतिनिधि दुःशासन की नीचता अपनी समस्त सीमाएँ लांघ चुकी हैं –

'असुर कैस्सा भेष केश पकड़ कै मरोड़ डाले।
के लेगी पर्दा ताण कै चल दासी बणकैं रहले।' [7]

भरी सभा में अपमानित हुई द्रौपदी अस्तित्व–रक्षण हेतु उपस्थित जन–समुदाय से दया की भीख माँगती है। हर तरफ से निराश हो, स्वयं को सामाजिक शोषण का शिकार जान कर, नारी को अनेक कोटरों में बन्दी करने वाले पुरुषों के प्रति अपने आक्रोश को व्यक्त करती है। एक विद्रोहिणी नारी के रूप में भीष्म को ललकारती हुई समस्त कुरुवंश के विनाश की घोषणा करती है। यहाँ द्रौपदी में 21वीं शती की विद्रोहिणी नारी की प्रतिशोध–भावना का साकार रूप दिखाई देता है –

मैं के एक बीर दुनिया मैं तुम सब बहू बेटियां आले हो।
बांस की ज्यूँ मनै तिड़ते दीखैं, आपस मैं मनैं लड़ते दीखैं।
कोए दिन मैं मनैं भिड़ते दीखैं, इस हस्तनापुर मैं ताले हो।
लखमीचंद जग के लोग हंसैंगे, आपस के मैं बांस खसैंगे।
इस हस्तनापुर में गिद्ध बसैंगे, कोए दिन मैं कव्वे काले हो।' [8]

वस्तुतः द्रौपदी का यह आक्रोश और विद्रोह खोखली सामाजिकता के प्रति मानवीय न्याय की आकांक्षा करने वाली वैयक्तिकता का विद्रोह है, शोषणकर्ता पुरुष वर्ग के प्रति शोषित नारी का विद्रोह है

विवाह अति प्राचीन सार्वभौम संस्था है, जो प्रत्येक मानव–समूह में पाई जाती है। पं. लखमीचंद ने अपने अनेक सांगों में कन्यादान, अनमेल विवाह आदि का बखूबी चित्रण किया है। अनमेल विवाह की त्रासदी अनेक परिवारों को तबाह कर देती है। समाज को समुन्नत बनाने के लिए इसका प्रतिकार आवश्यक है। लखमीचंद के प्रख्यात सांग 'पूरणमल' में भारतीय समाज, विशेषतः हरियाणवी समाज की इस ज्वलंत समस्या का विशद चित्रण है। अनमेल विवाह की त्रासदी का भुक्तभोगी अनेक प्रकार की कुंठाओं का शिकार हो, उचित–अनुचित के भेद को विस्मृत कर असभ्य आचरण करने लगता है। सांग 'पूरणमल' की नूणादे इसका साक्षात प्रमाण है। एक वृद्ध से ब्याही गई नूणादे मातृ–भाव को विस्मृत कर नैतिकता की समस्त सीमाओं को लांघती हुई पूरण के प्रति काम–भावना रखने लगती है –

बेटे आला ख्याल भूलगी, कुच्छ ना दिया दिखाई,
घूंघट करकै हुई खड़ी झट बहू बण कै सरमाई,
इसे मर्द तै मेल मिलै मेरी जिब हो सफल कमाई,
बालम आले कायदे करती गज का घूंघट करकै।' [9]

कदाचित इस विद्रूपता का रेखांकन कर लखमीचंद हरियाणवी समाज की विसंगतियों, विरोधाभासों और द्वन्द्वों की स्थिति को उजागर कर इनका प्रतिकार करना चाहते हैं। नूणादे जैसी व्यभिचारिणी नारी के प्रति अपनी मानसिकता उद्घाटित करते हुए कहते हैं –

'तेरे जैसी बेईमान का बेड़ा न्यूं के पास तरै सै।
तू डूब गई माँ हो कै नै बेटे पै नीत धरै सै।
तनै आगै मिलै पति जोड़ी का इब के इसे कर्म करै सै।
तनै नरक मैं कुण्ड मिलै कीड़्यां की जो खाज्या तेरे जिगर नै।' [10]

वस्तुतः यहाँ लखमीचंद असंयमित वासना की तुलना में नैष्ठिक चरित्र की श्रेष्ठता सिद्ध करते हैं। उनकी दृष्टि में मर्यादाहीन वासना बरसाती नाले की भाँति विनाशकारी है। उनके दाम्पत्य–जीवन के चित्रण में लोक–मर्यादाओं एवं लोक–विश्वासों की गहरी छाप दिखाई देती है। सत्यवान–सावित्री, नल–दमयन्ती, बीना और लकड़हारा जैसे युगलों के माध्यम से पति–पत्नी के पारस्परिक सहयोग, निष्ठा एवं प्रेम का चित्रण है। हरियाणवी लोक–जीवन में एक पतिव्रता नारी से धर्मानुकूल आचरण करते हुए सामाजिक मर्यादाओं का निष्ठापूर्वक पालन अपेक्षित है। सावित्री जैसी पतिव्रता नारी के समक्ष यमराज तक नतमस्तक हो जाते हैं। पूरणमल भगत अपनी मौसी नूणादे को इसी नारी–धर्म का निर्वाह करने के लिए कहता है। सांग 'नौटंकी' में भी लखमीचंद के नारी–सम्बन्धी विचारों को स्पष्ट अभिव्यक्ति मिली है। उनकी दृष्टि में समाज और परिवार की मुख्य धुरी नारी के सदाचरण से ही परिवार व समाज का भला हो सकता है। लखमीचंद लिखते हैं –

'भले घरां की बहू और बेटी सदा शर्म राखैं,
अमृत भरा रहै जिह्वा मैं जी चाहवै जब चाखैं,
माता–पिता और सास–ससुर की धजा शिखर मैं टांकै,
आए–गए की शर्म करैं कदे बुरा वचन ना भाखैं।' [11]

नारी–जीवन से जुड़े अन्य अनेक पक्षों का चित्रण भी लखमीचंद के काव्य में स्पष्टतः दिखाई देता है जो यह दर्शाता है कि लखमीचंद रूढ़ियों एवं परम्पराओं से ग्रसित भारतीय नारी के प्रति अत्यन्त संवेदनशील थे। अनमेल विवाह की भाँति दहेज प्रथा भी एक ऐसी विकट समस्या है जिसने भारतीय नारी के जीवन को त्रासद बना दिया है। नारी–जीवन के लिए अभिशाप स्वरूप दहेज की जड़ें आधुनिक भारतीय समाज में भी इतनी गहराई तक फैल गई हैं कि

उनको उखाड़ फेंकना असम्भव–सा हो गया है। 'सेठ ताराचन्द' में धर्मपाल की माता अपनी बेटी की विदाई के अवसर पर जो कुछ कहती है, उस वार्तालाप में दहेज की यह प्रथा स्पष्टतः दिखाई देती है –

'बेटी मेरी आत्मा कहती फूलों फलों सुहाग तेरा।
लेण देण मैं कसर न छोड़ी आगै बेटी भाग तेरा।
हीरे पन्ने मोर असर्फी थैली अन्दर डाल दई।
लाख रूपये की पौशाक बणा कै बरत कुटम्ब की चाल दई।
दस तील दस लाख रूपये की बणा हाल की हाल दई।
सब जेवर सोने के पहरा कै लाड चाव तै घाल दई।' [12]

हरियाणवी लोक–मर्यादा के अनुसार यौवन–प्राप्त पुत्री का विवाह समयानुसार न करने पर कन्या के माता–पिता को सामाजिक तिरस्कार सहना पड़ता है। सांग 'मीराबाई' तथा 'सत्यवान–सावित्री' में तत्कालीन समाज का यह पक्ष व्यापकता के साथ चित्रित हुआ है। एक ओर जहाँ मीरा के हाथ पीले न होने पर उसकी माँ चिंतातुर है, वहीं दूसरी ओर अश्वपति की विवाह योग्य पुत्री सावित्री की माँ भी सामाजिक दृष्टि से उसके कन्यादान को अनिवार्य मानती है।

'अतिथि देवो भवः'–भारतीय संस्कृति का अति महत्त्वपूर्ण पक्ष है। 'चापसिंह' सांग में चापसिंह के आने पर 'हुआ आनन्द कबीला सारा, जब सुणी थी बटेऊ आवण की' का उल्लेख करते हुए लखमीचंद जो चित्र प्रस्तुत करते हैं, वह ग्रामीण समाज की झांकी प्रस्तुत करता है। सांग 'नौटंकी' में आतिथ्य की महत्ता रेखांकित करते हुए कहते हैं –

'जिनकै बिन बुलाए अतिथि आज्यां उनका भाग बड़ा सै।
धर्म और श्रद्धा दोनों चाहिए आए–आए डाटण नै।' [13]

आज विडम्बना यह है कि भौतिकतावादी युग में प्राचीन सांस्कृतिक मूल्यों में निरन्तर गिरावट जारी है। आधुनिक भारतीय समाज में अतिथि देव तुल्य न रह कर उपेक्षा का पात्र बनता जा रहा है। इससे आहत लखमीचंद सांग 'नौटंकी' में फूलसिंह के मुख से कहलवाते हैं –

'परदेसी नै शरण लई थरी एक रात काटण नै।
घरबारी का धर्म भूल क्यूं त्यार खड़ी नाटण नै।
समझणियां अतिथि कै हाजिर सब कुछ पाया करै सै।
फेर सारा कुणबा घणी खुशामद मिलकै ठाया करै सै।' [14]

सांग 'ज्यानी जोर' में आतिथ्य धर्म को श्रेष्ठता प्रदान करते हुए अपने विचारों को वाणी प्रदान करते हैं –

'भीड़ पड़ी मैं घरां गैर कै बखत काटणा चाहिए।
गऊ ब्राह्मण अतिथियों का सब कष्ट बांटणा चाहिए।
टुकड़ा पाणी धन जगह देण तै ना कदे नाटणा चाहिए।
बिना ठिकाणे माणस हो तै जरूर डाटणा चाहिए।' [15]

वर्ण–व्यवस्था भारतीय समाज की अति प्राचीन व्यवस्था है। हमारे प्राचीन चिन्तकों ने समाज के अनिवार्य क्रिया–कलापों के आधार पर उसे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र – चार वर्णों में विभक्त किया था। किसी भी एक वर्ग के पथभ्रष्ट होने पर समाज में असंगतियाँ फैलने का भय रहता है। इस बात की अनिवार्यता को समझते हुए लोककवि पं. लखमीचंद सामाजिक व्यवहार का अनेक स्थानों पर उल्लेख करते हैं। उनकी मान्यतानुसार चारों वर्णों द्वारा अपने निर्धारित कर्मों को निष्ठापूर्वक करने से ही समाज में व्यवस्था बनी रह सकती है। सांग 'मीराबाई' में लिखते हैं –

'ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य, शूद्र नै कर्म जाणना चाहिए।
जै कर्म तै न्यारी चाल चलै तै भरम जाणना चाहिए।
लिख्या वेद मैं आदम देह नै वो धर्म जाणना चाहिए।
ना तै आगै पछताओगे कलु मैं खुले मुखेरे चर कै।' [16]

दास प्रथा अति प्राचीन काल से ही भारतीय समाज के लिए कोढ़ स्वरूप रही है। वस्तुतः दास प्रथा मानव मन की संकीर्णता का परिणाम है। समाज में जो असंतुलन है, अमीर–गरीब का जो भेदभाव है, वही दास प्रथा का मूल कारण है। पं. लखमीचंद के सांग 'राजा हरिश्चन्द्र' में एक दास की पीड़ा, परवशता एवं मनोभावों का विशद चित्रण है।

इस प्रकार पं. लखमीचंद ने लोक विश्रुत एंव पौराणिक कथाओं का आश्रय ले कर वर्तमान युग की अनेक विड़म्बनाओं का बखूबी चित्रण किया है। इसके द्वारा वस्तुतः वे वर्तमान मूल्यमूढ़ समाज में भारतीय संस्कृति के सार्वभौम उच्च आदर्शों को प्रसारित करने का प्रयास करते दिखाई देते हैं, जिनकी आज के पतनोन्मुख समाज में महती आवश्यकता है।

उद्देश्य

पं. लखमीचंद ने अपने अनेक सांगों में हरियाणवी परिवेशगत स्थितियों, सम्बन्धों व आचार–विचारों को सशक्त वाणी दी है। अनेक सामाजिक व पारिवारिक विद्रूपताओं व विसंगतियों का उद्घाटन कर वे प्राचीन सांस्कृतिक मूल्यों के प्रतिस्थापन का सशक्त प्रयास करते दिखाई देते हैं। इन पक्षों के अतिरिक्त हरियाणवी संस्कृति के अनेक ऐसे विधि–निषेधों की चर्चा भी उन्होंने अनेक स्थानों पर की है जो कहीं–न–कहीं समाज की अवनति के मूल में काम कर रहे हैं। उन्होंने अपने काव्य के माध्यम से नैतिक मूल्यों व परस्पर सौहार्द्र का व्यापक संदेश दिया है। निःसन्देह उनका काव्य आधुनिक भारतीय समाज में आस्थाओं एवं स्वस्थ परम्पराओं का पोषक तथा पतनोन्मुख मर्यादाओं, रूढ़ियों तथा अन्धविश्वासों का भंजक है।

उपसंहार

वर्तमान परिवर्तनशील युग में हो रहे अवमूल्यन के प्रति चिन्तित लखमीचंद अपने पात्रों के माध्यम से श्रेष्ठ मूल्यों पर जोर देते थे। उनकी दृष्टि में आपसी सम्बन्धों व रिश्तों की बुनियाद का मजबूत होना अत्यावश्यक है। मर्यादाओं के भंग होने पर राष्ट्र का पतन अवश्यम्भावी है। अनेक पौराणिक गाथाओं को आधार बनाकर उन्होंने दर्शाया है कि मर्यादाओं का उल्लंघन होने पर किस तरह बड़े–बड़े साम्राज्य नष्ट हो गये। निश्चित रूप से उनके काव्य में चित्रित पारिवारिक व सामाजिक मर्यादाओं का चित्रण हरियाणवी जन–मानस में नई चेतना का संचार करने में सफल हुआ है। वास्तविकता तो यह है कि हरियाणवी जन–जीवन का कोई भी कोना उनके भावपूर्ण हृदय की पकड़ से छूट नहीं सका। इस संदर्भ में कृष्णचन्द्र शर्मा लिखते हैं – 'जिस प्रकार कालिदास के मेघदूत में उत्तरी भारत के पर्वत, नदियाँ, झरने, वन और महल, अट्टालिकाएँ मेघदूत की पैनी दृष्टि से नहीं बच पाए, उसी प्रकार लखमीचंद की कविता में भी जीवन और लोक–जीवन का कोई पक्ष ऐसा नहीं, जो उनकी काव्य–दृष्टि से अनदेखा और काव्य–तूलिका से अलेखा बचा हो।'[17]

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. शशि जेकब, महिला उपन्यासकारों की रचनाओं में वैचारिकता, पृ. 36
2. डॉ. पूर्णचन्द शर्मा (संपा.), पं. लखमीचंद ग्रंथावली, पृ. 410
3. वही, पृ. 430
4. वही, पृ. 425
5. वही, पृ. 430
6. वही, पृ. 119
7. वही, पृ. 438
8. वही, पृ. 474
9. वही, पृ. 388
10. वही, पृ. 455
11. वही, पृ. 465
12. वही, पृ. 102
13. वही, पृ. 607
14. वही, पृ. 117
15. वही, पृ. 430
16. वही, पृ. 147
17. कृष्णचन्द्र शर्मा, कविसूर्य लखमीचंद, पृ. 209